10

ब्रह्मचर्य : वैज्ञानिक विश्लेषण

आज समग्र विश्व में अनाचार से फैलनेवाला एइड्झ रोग व्यापक हो चुका है, तब इस रोग से बचने के लिये केवल एक ही उपाय बचा है । वह है परिणत गृहस्थों के लिये स्वदारासंतोषविरमण व्रत अर्थात् एकपत्नीत्व तथा अन्य व्यक्ति के लिये ब्रह्मचर्य का पालन ही है । आजका समाज विज्ञान की सिद्धियों से इतना प्रभावित है कि किसी भी विषय में केवल विज्ञान के निष्कर्षों को ही अंतिम सत्य मानकर चलता है । किन्तु प्रत्येक क्षेत्र के विज्ञानी स्वयं स्वीकार करते हैं कि हमने प्रकृति के बहुत से रहस्य उद्घाटित किये है तथापि उनसे भी ज्यादा रहस्य उद्घाटित करना बाकी है । अतः विज्ञान के क्षेत्र में किसी भी अनुसंधान को अंतिम सत्य या निरपेक्ष सत्य के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिये ।

सामान्यतः मनुष्य व सभी प्राणी का स्वभाव है कि उनके अनुकूल हो उसे वह जल्दी से स्वीकार कर लेता है । सभी प्राणीयों में आहार, भय, मैथुन और परिग्रह की संज्ञा अर्थात् भाव अनादि काल से इतना प्रबल है कि इन्हीं चार भाव के अनुकूल किसी भी विचार को वह तुरंत स्वीकार कर लेता है । अतएव ब्रह्मचर्य के बारे में किये गये अनुसंधान जितने जल्दी से आचरण में नहीं आते उससे ज्यादा जल्दी से सिर्फ कहेजाने वाले सेक्सोलॉजिस्टों के निष्कर्ष तथा फ्रोइड जैसे मानसशास्त्रियों के निष्कर्ष स्वीकृत हो पाते हैं । हालाँकि उनके ये अनुसंधान बिल्कुल तथ्यहीन नहीं हैं तथापि व् केवल सिक्के की एक ही बाजू है । ब्रह्मचर्य के लिये फ्रोइड की अपनी मान्यता के अनुसार वीर्य तो महान शक्ति है । उसी शक्ति का सदुपयोग करना चाहिये। ब्रह्मचर्य का पालन करके मानसिक व बौद्धिक शक्ति बढानी चाहिये । अतः सिक्के की दूसरी बाजू का भी विचार करना चाहिये ।

इसके लिये रेमन्ड बर्नार्ड की किताब "Science of Regeneration" देखना चाहिये । उसमें वे कहते हैं कि मनुष्य की सभी जातिय वृत्तियों का संपूर्ण नियंत्रण अंतःस्रावि ग्रंथियों के द्वारा होता है । अंतःस्रावि ग्रंथियों को अंग्रेजी में ऍन्डोक्राइन ग्लेन्ड्स कहते हैं । यही ऍन्डोक्राइन ग्लेन्ड्स जातिय रस उत्पन्न करती है और उसका अन्य ग्रंथियों के ऊपर भी प्रभुत्व रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे खून में स्थित जातिय रसों यानि कि होर्मोन्स की प्रचुरता के आधार पर हमारा यौवन टिका रहता है । जब ये अंतःस्रावि ग्रंथियाँ जातिय रस कम उत्पन्न करने लगती हैं तब हमें वृद्धत्व व अशक्ति का अनुभव होने लगता है ।

ब्रह्मचर्य का शारीरिक, मानसिक व वाचिक वैसे तीनों प्रकार से पालन न होने पर पुरुष व स्त्री दोनों के शरीर में से सेक्स होर्मोन्स बाहर निकल जाते हैं । ये सेक्स होर्मोन्स ज्यादातर लेसीथीन, फॉस्फरस, नाइट्रोजन व आयोडीन जैसे जीवन जरूरी तत्त्वों से बने हैं । अंतिम अनुसंधानों के अनुसार लेसीथीन नामक तत्त्व मस्तिष्क का पौष्टिक आहार है । पागल मनुष्यों के खून में लेसीथीन बहुत कम पाया गया । उनकी पूर्वावस्था का अध्ययन करने पर मालुम पडा कि उनमें से बहुत से आदमी अपनी युवावस्था में ही बहुत प्रमाण में अनाचार करते थे ।

तो क्या आज भोग-विलास से भरपूर युग में मन, वचन, काया से पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन संभव है ? उनका उत्तर बहुत से लोग " ना " में देंगे किन्तु मेरी दृष्टि से प्राचीन आचार्य व महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ अर्थात् नियम या मर्यादाओं का यथार्थ रूप से पूर्णतया पालन किया जाय तो ब्रह्मचर्य का संपूर्ण पालन सरल व स्वाभाविक हो सकता है । जैन धर्मग्रंथों के अनुसार वे इस प्रकार हैं :--

1. स्त्री (पुरुष) व नपंसक से मुक्त आवास में रहना ।

2. अकेले पुरुष द्वारा अकेली स्त्री को स्त्रियों को धर्मकथा भी नहीं कहना और पुरुषों को स्त्री संबंधी व स्त्रियों को पुरुष संबंधी कथा / बातों का त्याग करना ।

3. स्त्री के साथ पुरुष को एक आसन ऊपर नहीं बैठना और स्त्री द्वारा उपयोग किये गये आसन पर पुरुष को दो घडी / 48 मिनिट तथा पुरुष द्वारा उपयोग किये गये आसन पर स्त्री को एक प्रहर/तीन घंटे तक नहीं बैठना चाहिये ।

4. स्त्री द्वारा पुरुष के और पुरुष द्वारा स्त्री के नेत्र, मुख इत्यादि अंगों को स्थिर दृष्टि से नहीं देखना ।

5. जहाँ केवल एक ही दीवाल आदि के व्यवधान में स्थित स्त्री-पुरुष की काम-क्रीडा के शब्द सुनायी पड़ते हों ऐसे " कुड्यन्तर " का त्याग करना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. पूर्व की गृहस्थावास में की गई कामक्रीडा के स्मरण का त्याग करना।

7. प्रणीत आहार अर्थात् अतिस्निग्ध, पौष्टिक, तामसिक, विकारक आहार का त्याग करना ।

8. रुक्ष अर्थात् लुख्खा, सुक्का आहार भी ज्यादा प्रमाण में नहीं लेना ।

9. केश, रोम, नख इत्यादि को आकर्षक व कलात्मक ढंग से नहीं काटना । स्नान विलेपन का त्याग करना । शरीर को सुशोभित नहीं करना।

स्वामिनारायण संप्रदाय में भी ब्रह्मचर्य का बहुत माहात्म्य है । उस संप्रदाय के निष्कुलानंदजी ने तो उपर्युक्त ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ के संबंध में एक काव्य/पद भी बनाया है और उसमें उसका महिमा बतायी है ।

ऊपर बतायी हुयी ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ पूर्णतः वैज्ञानिक है । उसका वैज्ञानिक विश्लेषण इस प्रकार दिया जा सकता है ।

ब्रह्मचर्य की प्रथम मर्यादा के अनुसार साधु को स्त्री, नपुंसक व पशु-पक्षी आदि से मुक्त आवास में रहना चाहिये । प्रत्येक जीव में सूक्ष्मस्तर पर विद्युद्शक्ति होती है । उदाहरण के रूप में समुद्र में इलेक्ट्रिक इल नामक मछली होती है । उसके विद्युद्प्रवाह का हमें अनुभव होता है । जहाँ विद्युद्शक्ति होती है वहाँ चुंबकीय शक्ति भी होती है । इस प्रकार हम सब में जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति है । अतः सब को अपना विद्युद्चुंबकीय क्षेत्र भी होता है । चुंबकत्व के नियम के अनुसार पास में आये हुए समान ध्रुवों के बीच अपाकर्षण और असमान ध्रुवों के बीच आकर्षण होता है । स्त्री व पुरुष में चुंबकीय ध्रुव परस्पर विरुद्ध होते हैं अतः उन दोनों के बीच आकर्षण होता है । अतः ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले पुरुष को स्त्री, नपुंसक व पशु-पक्षी रहित स्थान में रहना चाहिये ।

ब्रह्मचर्य की दूसरी बाड़ / मर्यादा के अनुसार अकेले पुरुष को अकेली स्त्री से धर्मकथा भी नहीं कहनी चाहिये तथा पुरुष को स्त्री संबंधी व स्त्री को पुरुष संबंधी बातों का त्याग करना चाहिये । जब अकेला पुरुष अकेली स्त्री से बात करता है तब दोनों परस्पर एक दूसरे के सामने देखते हैं और ऊपर बताया उसी प्रकार स्त्री व पुरुष में चुंबकीय ध्रुव परस्पर विरुद्ध होने से परस्पर सामने देखने से दोनों की आँखों में से निकलती हुयी चुंबकीय रेखाएँ एक हो जाने से चुंबकीय क्षेत्र भी एक हो जाता है । परिणामतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चुंबकीय आकर्षण बढ जाता है और यदि विद्युद्प्रवाह का चक्र पूरा हो जाय तो दोनों के बीच तीव्र आकर्षण पैदा होता है । परिणामतः संयमी पुरुष का पतन होता है ।

ब्रह्मचर्य की चौथी बाड़ के अनुसार स्त्री को पुरुष के व पुरुष को स्त्री के नेत्र, मुख इत्यादि अंगों को स्थिर दृष्टि से नहीं देखने का भी यही कारण है ।

ब्रह्मचर्य की तीसरी बाड़/नियम के अनुसार स्त्री-पुरुष को एक आसान ऊपर नहीं बैठना व जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो उसी स्थान पर ब्रह्मचारी पुरुष को 48 मिनिट व जिस स्थान पर पुरुष बैठा हो उसी स्थान पर स्त्री को 3 घंटे तक नहीं बैठना चाहिये । कोई भी मनुष्य किसी भी स्थान पर बैठता है उसी समय उसके शरीर के इर्दगिर्द उसके विचार के आधार पर अच्छा या दूषित एक वातावरण बन जाता है । उसके अलावा जहाँ कहीं बैठे हुये स्त्री या पुरुष के शरीर में से सूक्ष्म परमाणु उत्सर्जित होते रहते हैं । उसी परमाणु का कोई बुरा प्रभाव हमारे चित्त पर न हो इस कारण से ही ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ में इसी नियम का समावेश किया गया है ।

ब्रह्मचर्य की पाँचवीं बाड़ में कुड्यन्तर का त्याग बताया है और छट्ठी बाड़ में पूर्व के गृहस्थावास में की गई कामक्रीडा के स्मरण का त्याग बताया है । उपर्युक्त दोनों प्रकार के कार्य से मनुष्य का जैविक विद्युद्चुंबकीय क्षेत्र विकृत बनता है । वस्तुतः अपने शुभ या अशुभ विचार ही अपने जैविक विद्युद्चुंबकीय क्षेत्र को अच्छा या बुरा बनाता है । इसी जैविक विद्युद्चुंबकीय क्षेत्र को आभामंडल भी कहा जाता है । इसकी विशेषता यह है कि उसको मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी दिशा में फैला सकता है । अतः किसी भी विजातिय व्यक्ति संबंधित अशुभ विचार भी दोनों के बीच परस्पर मानसिक आकर्षण पैदा करता है । बाद में दोनों के बीच मानसिक संयोग होने पर अज्ञात रूप से अदृश्य मैथुन सेवन / अनाचार होकर ब्रह्मचर्य व्रत का खंडन हो जाता है ।

स्त्री-पुरुष के परस्पर विरुद्ध ध्रुवों का संयोजन पाँच प्रकार से हो सकता है । 1. साक्षात् मैथुन से, 2. सिर्फ स्पर्श से, 3. रूप अर्थात् चक्षु से, 4. शब्द अर्थात् वाणी या वचन से और 5. मन से । अतएव ब्रह्मचर्य का संपूर्ण नैष्ठिक पालन करने वाली व्यक्ति को शास्त्रकारों ने विजातिय व्यक्ति का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनिक भी स्पर्श करने की या उसके सामने स्थिर दृष्टि से देखने की, उसके साथ बहुत लंबे समय तक बातचीत करने की या मन से उसका विचार करने की मनाई की है ।

तत्त्वार्थ सूत्र नामक जैन ग्रंथ के चौथे अध्याय में प्राप्त देव संबंधित वैषयिक सुख का वर्णन उपर्युक्त बात का साक्षी है । तत्त्वार्थ सूत्रकार श्री उमास्वातिजी कहते हैं कि इशान देवलोक तक के देव साक्षात् मैथुन द्वारा, उससे ऊपर के देव अनुक्रम से केवल स्पर्श द्वारा, केवल चक्षु द्वारा, केवल वचन द्वारा, व केवल मन द्वारा अपनी कामेच्छा की पूर्ति करते हैं ।

ब्रह्मचर्य के पालन के लिये अतिस्निग्ध, पौष्टिक या तामसिक आहार का त्याग करना चाहिये । सामान्यतः साधु को दूध, दही, घी, गुड, सक्कर, तेल, पक्वान्न, मिठाई का आहार करने की मनाई की गयी है क्योंकि ये सभी पदार्थ शरीर में विकार पैदा करने में समर्थ हैं । किन्तु जो साधु निरंतर साधना, अभ्यास, अध्ययन, अध्यापन इत्यादि करते हैं या शरीर से अशक्त हों तो इन सब में से कोई पदार्थ गुरु की आज्ञा से ले सकता है । यदि शरीर को आवश्यकता से ज्यादा शक्ति मिले तो भी विकार पैदा होता है । अतः ब्रह्मचर्य के पालन के लिये अतिस्निग्ध, पौष्टिक या तामसिक आहार का त्याग करना चाहिये ।

ठीक उसी तरह रूख्खा सुखा आहार भी ज्यादा प्रमाण में लेने पर भी शरीर में विकार व जड़ता पैदा करता है । अतएव ऐसा रुक्ष आहार भी मर्यादित प्रमाण में लेना चाहिये ।

केश, रोम, नख को आकर्षक व कलात्मक रूप से काटना या स्नान-विलेपन करना ब्रह्मचारी के लिये निषिद्ध है क्योंकि ब्रह्मचारीओं का व्यक्तित्व ही स्वभावतः तेजस्वी - ओजस्वी होता है । अतः उनको स्नान-विलेपन करने की आवश्यकता नहीं है । यदि वे स्नान-विलेपन इत्यादि करें तो ज्यादा देदीप्यमान बनने से अन्य व्यक्ति के लिये आकर्षण का केन्द्र बनते हैं । परिणामतः क्वचित् अशुभ विचार द्वारा विजातिय व्यक्ति का मन व चुंबकीय क्षेत्र मलीन होने पर उसके संपर्क में आने वाले साधु का मन भी मलीन होने में देर नहीं लगती । अतएव साधु को शरीर अलंकृत नहीं करना चाहिये या स्नान-विलेपन नहीं करना चाहिये ।

इन नव नियमों का बड़ी कडाई से जो पालन करते है उनके लिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन करना आज के युग में भी संभव है और उससे विभिन्न प्रकार की लब्धि व सिद्धि प्राप्त होती हैं ।

इसके अलावा नैष्ठिक ब्रह्मचर्ययुक्त महापुरुषों के सानिध्य में और उनके स्मरण से भी नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है । हम सब के परम उपकारी गुरुदेव शासनसम्राट आचार्य श्रीविजयनेमि-सूरीश्वरजी महाराज भी ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के तेजपुंज थे । उनके नामस्मरण से भी हममें नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने का सामर्थ्य पैदा होता है ।

When the Eastern mystics tell us that they experience all things and events as manifestations of a basic oneness, this does not mean that they pronounce all things to be equal. They recognize the individuality of things, but at the same time they are aware of that all differences and contrasts are relative within an all-embracing unity. Since in our normal state of consciousness, this unity of all contrasts—and especially the unity of opposites—is extremely hard to accept, it constitutes one of the most puzzling features of Eastern philosophy.

Frtjof Capra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org